इकाई–2 चित्त की अवधारणा तथा चित्त की भूमियाँ

2.1 प्रस्तावना :

इससे पूर्व की इकाई में आप योग की विभिन्न परिभाषाओं द्वारा यह जान चुके हैं। कि योग क्या है? पहले की इकाई में आपने योग की परिभाषाओं में महर्षि पतंजलि द्वारा दी गयी परिभाषा का भी अध्ययन किया होगा। जिसके अनुसार ''चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।''प्रस्तुत इकाई में आप चित्त के विषय में विस्तार से जान सकेंगे। इसके साथ ही आप चित्त की भूमियों के विषय का ज्ञान भी इस इकाई के अन्तर्गत् प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप योग में चित्त व चित्त भूमियों के अध्ययन के महत्व को समझ व समझा सकेगें। तथा चित्त व चित्त भूमियों के ज्ञान सम्बन्धि विभिन्न विचारों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- चित्त एवं चित्त भूमियों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- आप चित्त के व्यवहारिक ज्ञान से अवगत हो सकेंगे।
- विभिन्न चित्त भूमियों में मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं के अन्तर को जान सकेंगे।

2.3 चित्त की अवधारणा :

चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। इस परिभाषा के सामने आते ही प्रत्येक विद्यार्थी की पहली जिज्ञासा होती है। चित्त क्या है? तथा इस चित्त के क्या कार्य हैं?

यदि सामान्य भाषा में कहें तो मानव के द्वारा सम्पादित की जाने वाली सभी क्रियाओं का कारण यह चित्त ही है। यह चित्त ही शरीर के अन्तर्गत आने वाली इन्द्रियों को विभिन्न क्रियाओं को करने का निर्देश देता है। अर्थात मनुष्य द्वारा आँखों से देखना, कानों से सुनना हाथ व पैरों को हिलाना आदि सभी क्रियायें चित्त के निर्देशानुसार ही होती हैं। यह चित्त ही सभी क्रियाओं की प्रेरणा है। तो क्या चित्त और आत्मा एक ही है। क्यों कि जब तक आत्मा मानव शरीर में रहती है। तब तक शारीरिक क्रियायें संचालित होती हैं। किन्तु जब आत्मा निकल जाती है। तो शारीरिक क्रियायें भी बंद हो जाती हैं।

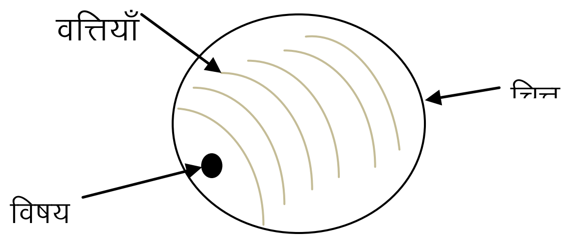
वास्तव में चित्त और आत्मा को अलग–अलग करके जानना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव कार्य है। क्योंकि इन दोनों में से एक के अनुपस्थित होने पर दूसरे को जाना नहीं जा सकता। जहाँ आत्मा शरीर में चेतना का कारण है। वहीं चित्त इस चेतन शरीर द्वारा कि जाने वाली क्रियाओं का कारण है। व्यवहारिक रूप से मानव में जो ''मैं'' का भाव है। अर्थात् मैं खाता हूँ, मैं जाता हूँ, मैं करता हूँ आदि चित्त के ही कारण है।

अब प्रश्न उठता है कि यह चित्त आता कहाँ से है? सृष्टि उत्पत्ति के क्रम में जब प्रकृति के त्रिगुणों सत्व, रज और तम में वैषम्य उत्पन्न होता है। तब सत्व गुण के बढने तथा राज और तम के घटने पर जो स्थिति उत्पन्न होती है। वही चित्त की उत्पत्ति की अवस्था है। इसी कारण चित्त को सत्वप्रधान कहा जाता है। दर्शन की भाषा में चित्त को प्रकृति का सात्विक परिणाम कहा गया है।

चूंकि प्रकृति त्रिगुणात्मक है। अतः चित्त भी त्रिगुणात्मक है। इन तीनों गुणों की अलग–अलग विशिष्टता के कारण चित्त भी तीन प्रकार का होता है– प्रख्याशील, प्रवृत्तिशील, और स्थितिशील।

प्रख्याशील चित्त सत्वप्रधान होता है। और सत्वगुण के प्रभाव के कारण वह धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में रत रहता है। वहीं प्रवृत्तिशील चित्त रजप्रधान होता है। रजोगुण के प्रभाव के कारण चित्त विषयों का भोग करने में प्रवृत्त होने लगता है। तथा स्थितिशील चित्त तमोगुण प्रधान होता है। जिसके कारण वह अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य, राग आदि वृत्तियों में लगा रहता है। चित्त के इन तीनों प्रकारों से अलग चित्त का एक और प्रकार भी है। जिसे योगीजन 'पर प्रसंख्यान' कहते है। इस प्रकार के चित्त में मात्र सत्वगुण होता है। तमोगुण का तो पहले अर्थात् प्रख्याशील चित्त में ही लोप हो चुका है। किन्तु अब चित्त रजोगुण से भी पूरी तरह मुक्त होता है। चित्त की यह अवस्था धर्ममेघ नामक समाधि कहलाती है। इस समाधि के विषय में आप आगे के अध्यायों में जानेंगे।

विद्धानों ने चित्त को कई व्यवहारिक उदाहरणों द्वारा समझाया है। इन्हीं में से एक उदाहरण में चित्त को एक तालाब के समान बताया गया है जिस प्रकार तालाब में एक छोटे से छोटा कण या मात्र हवा की एक लहर भी तरंग उत्पन्न कर देती है। उसी प्रकार चित्त में एक छोटा सा विषय भी हलचल उत्पन्न कर देता है।

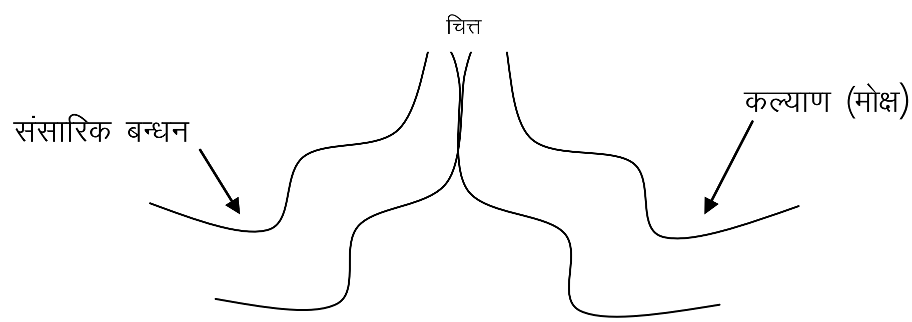


चित्र : 1

एक अन्य उदाहरण में चित्त को स्फटिक मणि के समान बताया गया है। जिस प्रकार स्फटिक के समीप जो रंग होता है। वह उसी रंग जैसा हो जाता है। उसी प्रकार चित्त सत्व, रज और तम जिस गुण के प्रभाव में होता है। उसका स्वभाव भी वैसा ही हो जाता है। इसका वर्णन हम पूर्व में चित्त के प्रकारों प्रख्या, प्रवृत्ति, स्थिति में भी कर आये हैं।

यह चित्त शुद्ध चैतन्यस्वरूप पुरुष की अभिव्यक्ति का माध्यम है। पुरुष विषय भोग करने के लिए प्रकृति का सहारा लेता है। और चित्त प्रकृति से ही उत्पन्न तत्व है। जो पुरूष के लिए विषय को ग्रहण करता है। पातंजल योग सूत्र के भाष्यकार महर्षि व्यास ने चित्त को चुम्बक के समान बताया है। जिस प्रकार चुम्बक के निकट आते ही लोहा उसकी और खिंचने लगता है। उसी प्रकार चित्त के सम्पर्क में आने पर पुरुष भी चित्त में उत्पन्न वृत्तियों के अनुरुप सुख, दुःख, मोह आदि का भोग करने लगता है। किन्तु वास्तव में चित्त और पुरुष सदैव एक दूसरे से भिन्न होते है। जैसे– चुम्बक और लोहा

पुरुष को भोग या मोक्ष की ओर ले जाने में भी इस चित्त का ही योगदान होता है। इसी कारण चित्त को एक नदी के उदाहरण से समझाया गया है। जिसकी दो धारायें हैं। एक धारा कल्याण अर्थात् मोक्ष के लिए बहती है। और दूसरी धारा संसारिक बन्धनों में बांधती है।

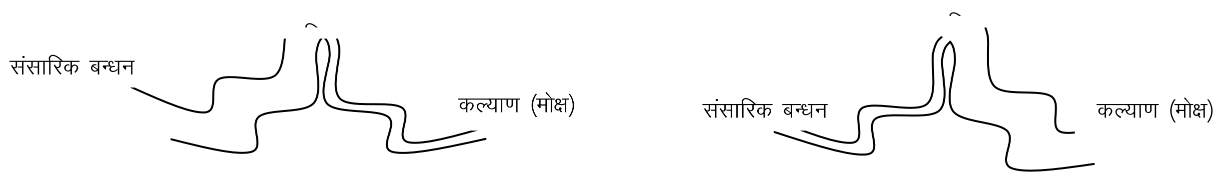


चित्र : 2

सामान्य मनुष्यों के चित्त में ये दोनों धारायें तो होती है। किन्तु मोक्ष की ओर जाने वाली धारा बहुत हल्की होती है। जबकि भोग की ओर जाने वाली धारा बहुत चौड़ी और प्रबल होती है। किन्तु जब एक सामान्य मनुष्य योग की शरण में जाता हो तब वह चित्त वृत्तियों के निराध के विभिन्न उपायों को अपना कर मोक्ष की ओर जाने वाली धारा को मजबूत व तेज बना लेता है। और भोग की ओर जाने वाली धारा धीरे धीरे सूख जाती है। (चित्त वृत्तियों के निरोध के उपाय आप इस अध्याय की इकाई–3 में जानेगें)।

सामान्यजन **योगीजन**

(चित्तावस्था) **(चित्तावस्था)**



चित्र : 3

जिससे वह संसारिक बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। चित्त सम्बन्धी उक्त उदाहरण से चित्त का एक महत्वपूर्ण लक्षण स्पष्ट होता है। चित्त कभी हमें अच्छी दिशा मे अर्थात् अच्छे कार्यों कि ओर ले जाता है। और कभी बुरी दिशा अर्थात् गलत कार्यों कि ओर। किन्तु योग साधना एक ऐसा सशक्त साधन है। जिसके द्वारा हम चित्त को केवल अच्छी दिशा की ओर ही गतिशील रख सकते है। अब आगे की चर्चा में आप चित्त के अन्तःकरण स्वरूप तथा चित्त की क्रियाविधि के विषय में जानेगें।

अभ्यास प्रश्न भाग–1

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

(क) प्रकृति..............है।

(ख) चित्त मूल रूप ....है।

(ग) चित्त एक नदी की भाँति है। जिसकी दो धारायें है। एक .... की ओर जाती है और दूसरी .... की ओर।

(घ) महर्षि व्यास ने चित्त को .... के समान बताया है।

2. एक शब्द में उत्तर दीजिए–

(क) चित्त को प्रकृति का कैसा परिणाम कहा गया है?

(ख) मन, बुद्धि, अहंकार व चित्त के संयुक्त रूप को क्या कहते हैं?

(ग) प्रख्याशील चित्त में किस गुण की प्रधानता होती है?

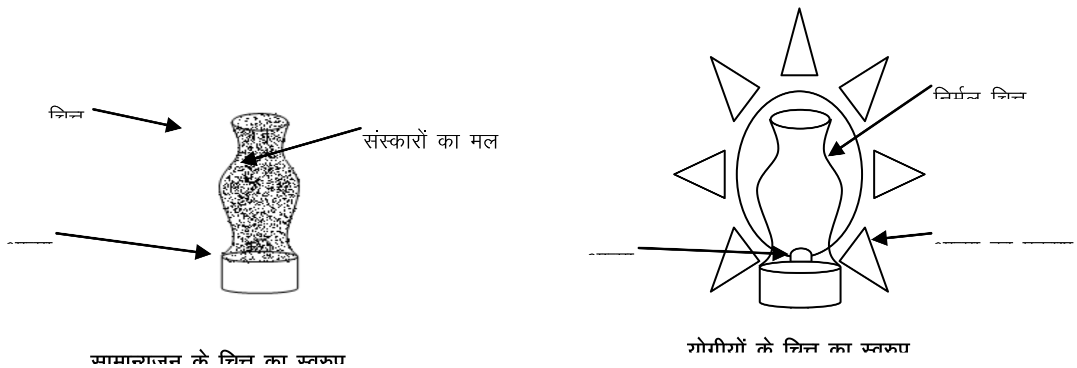
2.3.1 अंतःकरण के रूप में चित्त :

सृष्टि उत्पत्ति के क्रम में जब चित्त अर्थात् पुरुष के प्रकाश से बुद्धि प्रकाशित होती है। तब चित्त की उत्पत्ति होती है। अर्थात् पुरुष के सम्पर्क से बुद्धि का चेतन होना ही चित्त का बनना है। चेतन होते ही यह बुद्धि अर्थात् चित्त कार्यों को सम्पादित करना प्रारम्भ कर देता है।

चित्त को अन्तःकरण के रूप में भी स्वीकार किया गया है। विशेषकर योगदर्शन में चित्त के लिए अन्तःकरण शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि अन्य दर्शनों की बात करें तो न्याय दर्शन में अन्तःकरण के लिए मन शब्द को अधिक प्रयोग किया गया है वहीं अद्वैत वेदान्त में मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त को अन्तकरण के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ अंतःकरण चतुष्टय की अवधारणा कि गयी है। किन्तु सांख्य मन, बुद्धि एवं अहंकार को ही अंतःकरण मानता है।

किन्तु इस सभी से भिन्न योगदर्शन मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त इन चारों के समूह को ही अंतःकरण की संज्ञा देता है। इन चारों तत्वों के अपने कार्य विशेष है। जिनके आधार पर मनुष्य के जीवन की क्रियायें सम्पादित होती है। जैसे मन का कार्य संशय करना है। अर्थात् जब मनुष्य किसी कार्य में संशय कर रहा होता है। तब समझना चाहिए की यह संशय का भाव मन के द्वारा उत्पन्न किया गया है। और यदि मनुष्य द्वारा किसी कार्य को करने का निश्चय लिया गया है तब समझना चाहिए कि यह कार्य बुद्धि के द्वारा किया गया है, यदि मनुष्य किसी विषय को लेकर अभिमान प्रदर्शित कर रहा होता है। अर्थात् कि यह मेरा है! मैने यह किया! मै ऐसा हूँ !आदि तब समझना चाहिए कि यह अहंकार द्वारा कराया जा रहा है। और यदि स्मरण सम्बन्धी क्रिया मनुष्य द्वारा की जा रही हो तो यह चित्त द्वारा हो रहा है। ऐसा समझना चाहिए। भूतकाल में किये गये कार्यों के संस्कारों का संग्रह हमारे चित्त में ही होता है। और समय समय पर यह संस्कार कार्य रूप में परिणत होकर सामने आते है।

चित्त का कार्य होता है। इन सस्कारों को प्रदर्शित करना। संस्कार जितने बुरे होंगे चित्त भी उतना ही मलिन होगा किन्तु योग साधना द्वारा चित्त पर जमे इन संस्कारों के मल को साफ किया जा सकता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।– जब किसी प्रकाशदान (लालटेन) के काँच पर कालिख जमा हो जाती है। तब प्रकाश बहुत कम बाहर निकल पाता है, किन्तु जब काँच पर से उस कालिख को साफ कर दिया जाता है, तब भरपूर मात्रा में प्रकाश चारों ओर फैलता है। ऐसा हि हमें चित्त के साथ समझना चाहिए। चित्त प्रकाशदान के काँच के समान है। और प्रकाशदान की बाती आत्मा के समान । जब चित्त पर संस्कारों का मल (कालिख) चढ़ जाती है। तो आत्मा का प्रकाश बाहर नहीं निकल पाता। किन्तु योग साधना के द्वारा जब चित्त पर जमे इन मल को साफ कर दिया जाता है। तो आत्मा का प्रकाश (ज्ञान) सर्वत्र फैल जाता है। अब चित्त की क्रिया विधि को हम आगे की चर्चा में विस्तार से जानेंगे।



चित्र : 4

अभ्यास प्रश्न भाग–2

1. सत्य/असत्य बताइये
   (क) योगदर्शन में चित्त को अंतःकरण कहा गया है।
   सत्य/असत्य
   (ख) मन का कार्य निश्चय करना है।
   सत्य/असत्य
   (ग) पुरुष के सम्पर्क से बुद्धि में चेतना आती है।
   सत्य/असत्य
2. लघु उत्तरीय प्रश्न–
   (क) सांख्य के अनुसार अंतःकरण कौन–कौन से हैं?
   (ख) मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त के क्या–क्या कार्य हैं?
   (ग) चित्त में पड़े संस्कारों से आप क्या समझते हो?

2.3.2 चित्त की क्रिया विधि :

चित्त के द्वारा की जाने वाली सभी क्रियायें पुरुष के अनुभव को सम्भव बनाने के लिए ही होती है, अब प्रश्न उठता है। कि इस प्रक्रिया की क्रिया विधि क्या है? इसे इस प्रकार से समझा जा सकता है। सर्वप्रथम बुद्धि इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य विषयों के सम्पर्क में आती है। किन्तु वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये गये विषय का विवरण ग्रहण नहीं कर पाती। किन्तु जैसे ही विषय मन के सम्पर्क में आता है। वैसे ही उस विषय के विवरण के सम्बन्ध में मन संशय अर्थात् संकल्प–विकल्प करने लगता है। उसके पश्चात् विषय का विवरण अहंकार के पास जाता है। अहंकार उस विषय पर अभिमान करता है। और अंत में विषय पुनः बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जाता है। और अब बुद्धि उस विषय पर निर्णय ले लेती है। कि उस विषय को ग्रहण किया जाना है, अथवा नहीं। यह पूरी प्रक्रिया चित्त में संस्कार के रूप में संग्रहित हो जाती है। और भविष्य में उस विषय के पुनः सामने आने पर मनुष्य द्वारा शीध्र प्रतिक्रिया कर दी जाती है। क्योंकि उस विषय का ज्ञान चित्त में अनुभव के रूप में संग्रहित था। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को सामान्यतः आसानी से नहीं समझा जा सकता अतः आइये इसे एक उदाहरण के द्वारा समझें – मान लिजिए एक फल (सेब, केला आदि) विषय के रूप में हमारे सामने आता है। फल का ज्ञान आँखों के द्वारा हमारी बुद्धि तक जाता है। और बुद्धि "कुछ है" का भाव उत्पन्न करती है। किन्तु उसके सामने आते ही हम कोई प्रतिक्रिया नहीं करते। परन्तु जैसे ही फल का ज्ञान मन के पास जाता है। मन संशय उत्पन्न करता है। कि "यह शायद फल है, इसे ग्रहण किया जा सकता है।" तत्पश्चात् फल का ज्ञान अहंकार के पास जाता है। अहंकार "यह फल मेरा है।" इस रूप में अभिमान करके बुद्धि के पास उसे भेज देता है। अंत में बुद्धि उस अभिमान को ग्रहण करती है। और निश्चय करती है। कि "यदि यह फल मेरा है, तो इसे खा लेना चाहिए।" और मनुष्य इसी अनुरूप क्रिया करता हुआ फल को खा लेता है। अब यह सारी प्रक्रिया उसके चित्त में संस्कार के रूप में संग्रहित हो जाता है। और भविष्य में उस फल के सामने आते ही स्मरण क्रिया सक्रिय होती है। और मनुष्य के द्वारा फल को शीघ्र ग्रहण कर लिया जाता है।

इस सब के अतिरिक्त बुद्धि को जिसमें अहंकार आदि भी शामिल है। योग की अन्य विचार धारा में चित्त भी कहते है। इसे हम पहले भी पढ़ चुके हैं। बुद्धि या चित्त जीवन की क्रियाओं के संचालन के अतिरिक्त अपने आप में संस्कारों को तथा पूर्वजन्मों की वासनाओं को भी समाहित रखता है। उचित समय पर प्रेरणा पाकर ये संस्कार चित्त जागृत हो जाते हैं। और जीवन में दृश्यमान हो उठते हैं। हम सभी मनुष्य पूर्व जन्म में किसी न किसी जीव योनी को भोग चुके हैं। उन सभी योनियों के संस्कार इस चित्त में पड़े हुए हैं। जिनके अनुसार ही हमें जीवन में दु:ख या सुख का उपभोग करते हैं। जिस प्रकार किसी जाल में अनेक गाँठे होती है। उसी प्रकार इस चित्त में पूर्वजन्मों के संस्कार गुथे रहते हैं। और समय आने पर ये संस्कार रूपी गाँठे खुलती जाती है। और मनुष्य संस्कार के फलों को भोगता रहता है। संस्कार के रूप में प्रवृत्तियाँ (वृत्तियाँ) चित्त में इस प्रकार रहती हैं। कि कभी भी अचानक स्वतः ही प्रकट हो जाती है। क्योंकि वे पहले की अनुभूतियाँ है। और संस्कार रूप में चित्त में विद्यमान है। जैसे पूर्व में दिये गये उदाहरणानुसार फल (विषय) का ज्ञान जो संस्कार के रूप में चित्त में संग्रहित हो जाता है। और पुनः जब फल (विषय) दिखाई देता है। तो वह चित्त से अचानक प्रकट हो जाता है। चित्त में संस्कार के रूप में अच्छे और बुरे दोनों तरह के संस्कार संचित होते है। जो उचित अवसर आने पर कार्यरूप में परणित हो जाते है। अच्छे संस्कार सुख और बुरे संस्कार दुःख उत्पन्न करते है। किन्तु

यदि योग साधना का सहारा लिया जाये तो सुख और दुःख उत्पन्न करने के करक संस्कार को नष्ट किया जा सकता है। इसका वर्णन हम पूर्व में प्रकाशदान के उदाहरण की चर्चा में कर आये हैं। संस्कारों के संग्रह के अतिरिक्त चित्त का कार्य चेष्टा उत्पन्न करना भी हो। चित्त की इस चेष्टा के कारण ही इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों के सम्पर्क में आकर क्रिया करती है। जैसे नेत्रों द्वारा विषय का देखा जाना, कानों द्वारा विषय का सुना जाना आदि। चित्त द्वारा किये जाने वाले सभी कार्य मनुष्य के स्वभाव का निर्माण करते है। अर्थात् मनुष्य के चित्त की अवस्था के अनुरूप ही मनुष्य का स्वभाव और कार्य होंगे। योगदर्शन की भाषा में चित्त की इन अवस्थाओं को चित्त की भूमियाँ कहते है। चित्त की ये भूमियाँ पाँच प्रकार की होती है। चित्त की भूमियों पर विस्तृत चर्चा अब अगले शीर्षक में विस्तार से की जायेगी।

अभ्यास प्रश्न भाग – 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न–
   (क) बुद्धि का कार्य है–
   (अ) निश्चय करना (स) अभिमान करना
   (ब) स्मरण करना (द) संकल्प करना
   (ख) चित्त पर आवरण है–
   (अ) विचारों का (स) संस्कारो का
   (ब) भावनाओं का (द) चरित्र का
2. एक शब्द में उत्तर दीजिए–
   (क) संस्कारो के संग्रह के अतिरिक्त चित्त का क्या कार्य होता है?
   (ख) चित्त के द्वारा की जाने वाली सभी क्रियायें किसके लिए होती है?
   (ग) बुद्धि किसके माध्यम से सर्वप्रथम विषयों के सम्पर्क में आती है?

2.4 चित्त की भूमियाँ :

योग साधक जब साधारण मनुष्य की अवस्था से योगी पुरुष की अवस्था तक पहुँचता है। तो इस मार्ग में उसका चित्त विभिन्न स्तरों को प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ता है। चित्त की प्रत्येक अवस्था में उस के मनोभाव व सामान्य क्रियाकलापों में परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् जब उसका चित्त निम्नतर अवस्थाओं में रहता है। तब उसका मनोभाव व सामान्य क्रियाकलाप निम्न स्तर के ही होते हैं। उदाहरणतः वह रात दिन भोग विलास के कार्यों तथा सांसारिक माया मोह में लिप्त रहता है। किन्तु जैसे जैसे उसका चित्त योग साधना के बल पर उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करता है। वैसे ही उसके मनोभावों और सामान्य क्रियाकलापों में भी उच्चता का भाव आने लगता है। अर्थात् वह रात दिन सात्विक प्रवृत्ति वाले कार्यों को करता रहता है। जैसे– ईश्वर भक्ति, निष्काम कर्म, ध्यान, प्राणायाम इत्यादि।

वैसे तो चित्त की अनेक अवस्थाएँ हो सकती हैं। किन्तु योगदर्शन में चित्त की पाँच अवस्थाओं का ही वर्णन किया गया है। और इन्हीं पाँच अवस्थाओं को यहाँ पर विस्तार से समझाया जायेगा। योगदर्शन की भाषा में चित्त की इन पाँच अवस्थाओं को चित्त की पाँच भूमियाँ कहते हैं। जो निम्न हैं– क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरूद्ध। भूमियाँ शब्द का

प्रयोग यहाँ पर स्तर के रूप में ही प्रयोग किया गया है। अर्थात् चित्त जिस स्तर पर रहता है। उसे ही यहाँ चित्त की भूमि कहा गया है। चित्त की भूमियों की विशेषता यह है। कि प्रत्येक चित्त की भूमि में त्रिगुणों सत्व, रज और तम में से एक की प्रधानता होती है। और चित्त उस गुण की प्रधानता के अनुरूप ही क्रिया करता है।

पूर्व में हम यह चर्चा कर आये हैं। कि चित्त के मलिन होने का अर्थ है। चित्त पर पहले किये गये कर्मों के संस्कारों का आवरण पड़ना इसके विपरीत चित्त के निर्मल होने का अर्थ है। उस संस्कार रूपी आवरण का क्षीण अर्थात् हट जाना। चित्त जब निम्न भूमि से उच्च भूमि पर जाता है तब यह चित्त पर पड़ा संस्कारों का आवरण धीरे धीरे क्षीण हो जाता है। और जैसे ही चित्त उच्चतम् भूमि को प्राप्त होता है। वैसे ही संस्कारों का यह आवरण पूर्ण रूप से हट जाता है। और चित्त निर्मलता को प्राप्त हो जाता है। जो कि योग का परम लक्ष्य है। आइये अब चित्त की इन भूमियों पर क्रम से चर्चा करें –

अभ्यास प्रश्न भाग – 4

1. लघु उत्तरीय प्रश्न
   (क) चित्त की भूमियों का नामोल्लेख करें।
   (ख) चित्त मलिन क्यों होता है?
   (ग) चित्त के निर्मल होने से क्या तात्पर्य है?

2.4.1 क्षिप्त भूमि :

चित्त की इस भूमि में चित्त राजोगुण प्रधान होता है। तथा तमोगुण और सत्त्वगुण दबे हुए रहते हैं। चित्त की इस अवस्था में मनुष्य पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियों द्वारा निरन्तर विषय भोग में लिप्त रहता है। इस अवस्था में मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रहता और वह चंचल होकर निरन्तर विषयों के पीछे भागती रहती है। इस अवस्था में मनुष्य को कृत और अकृत कर्त्तव्यों का भी बोध नहीं रहता, सामान्य भाषा में कहें तो उसे भले बुरे का भी ध्यान नहीं रहता वह मात्र इन्द्रिय सुख के लिए कार्य करता रहता है। वर्तमान में अधिकांश मनुष्यों का चित्त इसी अवस्था में स्थिर रहता है। जिसके कारण हमें समाज में भोग विलास के प्रति ज्यादा आकर्षण देखने को मिलता है। और प्रत्येक मनुष्य राग, द्वेष, काम, क्रोध जैसे दुर्गुण मानव को शारीरिक और मानसिक दोनों से ग्रस्त करते है। इस समय समाज में जो अशांति का माहौल दिखाई दे रहा है। वह इस क्षिप्त भूमि युक्त चित्त के ही कारण है। विषयों के प्रति निरन्तर बढ़ती लालसा असंतोष, व्याभिचार, असत्यता, हिंसा, चोरी, जमाखेरी आदि दुष्प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायक होती है। इन दुष्प्रवृत्तियों के कारण मनुष्य का नैतिक रूप से निरन्तर पतन होता जा रहा है। सामान्य रूप से योग मनुष्य के नैतिक विकास की ही बात करता है। उसका परम उद्देश्य मनुष्य में नैतिकता का विकास करना ही है। इस कारण वह निरन्तर इस भूमि को त्याग कर उच्चतर भूमियों में स्थिर होने का उपदेश देता है। क्योंकि चित्त की यह अवस्था योग के अनुकूल नहीं होती। अब प्रश्न उठता है कि क्या इस अवस्था के चित्त वाले मनुष्यों का आध्यात्मिक विकास सम्भव नहीं है? चित्त की इस अवस्था के रहते मनुष्य कदापि योगाभ्यास के मार्ग पर नहीं चल सकता यह बात सही है। किन्तु वह प्रयास अवश्य कर सकता है। चूंकि इस अवस्था में भी सत्वगुण एक छोटे से अवसर की प्रतिक्षा में रहता है। और जैसे ही उसे वह अवसर मिलता है। (जैसे किसी साधु (अच्छे) व्यक्ति का संग) वैसे ही वह रजोगुण को दबाने का प्रयास करने लगता है। निरन्तर ऐसा होते रहने से वह उच्चतर भूमियों की दिशा में अग्रसर हो सकता है। और एक समय आता है जब वह उच्चतर चित्त भूमि में स्थिर हो जाता हैं

समाज में ऐसे कई उदाहरण है। जैसे डाकू रत्नाकर जो बाद में महर्षि बाल्मिक हुए, डाकू अंगुलिमार जो बुद्ध की शरण में जाकर संन्यासी हो गया। कहने का तात्पर्य है। कि योगसाधना के द्वारा चित्त की इस निम्न भूमि को त्याग कर उच्च भूमि को प्राप्त किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न भाग – 5

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–
   (क) क्षिप्त भूमि में चित्त में .... गुण की प्रधानता होती है।
   (ख) दुष्प्रवृतियों के कारण मनुष्य का .... पतन हो जाता है।
   (ग) क्षिप्त भूमि में चित्त चंचल होकर निरन्तर .... के पीछे भागता रहता है।
   (घ) राग, द्वेष, क्रोधादि दुर्गुण, मनुष्य को .... व .... रूप से रोगी बनाते हैं।

2.4.2 मूढ़ भूमि :

चित्त की यह अवस्था तमोगुण प्रधान होती है। सत्वगुण व रजोगुण दबे हुए रहते है। इस अवस्था के चित्त वाले मनुष्यों के स्वाभाव मे काम, लोभ और मोह की प्रवृत्ति अत्यधिक होती है। काम, लोभ और मोह से ग्रस्त इस चित्त के मनुष्य को कर्तव्य–अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। तथा वह शास्त्र विरुद्ध कर्मों का आचरण करते हुए अज्ञान और अधर्म के मार्ग पर अग्रसर रहता है। उसके जीवन में करने के लिए ऐसा कोई भी कार्य नहीं होता जो समाज के लिए हितकर हो उसका जीवन बिना पतवार की नाव के समान लक्ष्यहीन इधर उधर भटकता रहता है। वह निरन्तर निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदि वृत्तियों से घिरा हुआ पशुओं के समान पेट भरने और सोने तक ही सीमित रहता है। मूढ चित्त वाले मनुष्य राक्षस और पिशाच प्रवृति के होते है। ये मादक पदार्थों जैसे शराब, अफीम आदि का सेवन कर अकर्मण्यता का जीवनयापन करते है। ऐसे मनुष्य पर संस्कृति की एक सुभाषित का उपदेश सटीक बैठता है–

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्यु लोके भुविभार भूता,
मनुष्यरूपेण मृगाःश्चरन्तिः।।

अर्थात् जिसके पास विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण, धर्म नहीं है। वह इस पृथ्वी पर भार है। वह मनुष्य के रूप में घास चरता हुआ हिरन मात्र है।

चित्त की इस भूमि में चंचल कम किन्तु स्थिरता ज्यादा होती है। जैसा कि हमने पूर्व की चित्त भूमि (क्षिप्त) को जाना उसमें जिस प्रकार विषय भोगों के प्रति चंचलता रहती थी, किन्तु उसकी अपेक्षा इस चित्त भूमि में चंचलता तो कम होती ही है। अपितु कुछ प्राप्त करने की भी इच्छा नहीं होती। जिसके कारण इस चित्तावस्था का मनुष्य बिना किसी विकास के एक निम्न स्तरीय जीवन शैली के जीवन को बोझ की भाँति जीता है, किन्तु इस सबके बाद भी योगी का संग पाकर इस चित्त के मनुष्य भी अपने चित्त का विकास कर सकते है। और उच्चतर चित्त भूमियों को प्राप्त कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न भाग – 6

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए–
   (क) मूढ़ भूमि में चित्त में किस गुण की प्रधानता होती है?
   (ख) सुभाषित उपदेश में मूढ भूमि चित्त के मनुष्य की तुलना किस पशु की गयी है।
2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–
   (क) मूढ भूमि चित्त वाले मनुष्य .... और .... प्रवृत्ति के होते हैं।
   (ख) मूढ भूमि में चित्त की चंचलता .... भूमि से कम होती है।
   (ग) मूढ भूमि के चित्त में .... व .... गुण दबे हुए रहते हैं।

2.4.3 विक्षिप्त भूमि :

चित्त की यह भूमि क्षिप्त और मूढ़ अवस्था से कुछ बेहतर है। इस चित्तावस्था में सत्वगुण का आधिक्य होता है। किन्तु यह सत्वगुण की अधिकता स्थाई नहीं रह पाती और बीच बीच में रजोगुण की प्रबलता के कारण चित्त विषयों कि ओर आकर्षित होने लगता है। जब तक सत्वगुण की प्रधानता रहती है। तब तक मनुष्य की प्रवृत्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य में होती हैं किन्तु जैसे ही चित्त पर रजोगुण का प्रभाव बढ़ता है। वैसे ही मनुष्य की प्रवृत्ति विषयों की ओर होने लगती है।

चित्त की इस अवस्था में सत्व की प्रधानता कई बार व्यक्ति के साथ हुई किसी अप्रिय घटना जैसे किसी प्रियजन की मृत्यु के समय भी हो जाती है। उस समय उस व्यक्ति का मन सांसारिक माया मोह से विरक्त हो जाता है। और कुछ समय के लिए वह ईश्वर भक्ति या फिर अन्य आध्यात्मिक कर्मों में अपने समय को लगाता है, किन्तु जैसे ही उसके सम्मुख सांसारिक माया का कोई प्रबल विषय आता है। तो उसका चित्त सत्वगुण को त्याग कर रजोगुण को धारण कर लेता है। और पुनः विषय भोग में लिप्त हो जाता है। उसके जीवन में ऐसे परिवर्तन सहसा ही कई बार होते है। किन्तु वह सत्वगुण की प्रवृत्ति को स्थाई नहीं कर पाता।

चित्त की यह अवस्था प्रथम बार योगाभ्यास का प्रारम्भ करने वाले योग जिज्ञासुओं की भी होती है। जब कभी प्राथमिक योगजिज्ञासु किसी योगगुरू के उपदेशों को सुनता है तो उसके चित्त में सत्वगुण प्रबल हो उठता है और वह योगाभ्यास का प्रारम्भ कर देता है। किन्तु कुछ समय पश्चात् वही अपनी पुरानी अवस्था में लौट आता है।

जब चित्त सत्व प्रधान होता है। तब कई बार उसे योग की अवस्था के रूप में देखा जाता है। किन्तु यह योग की अवस्था नहीं क्योंकि योग उस अवस्था को कहते हैं, जिस स्थिति में मात्र सत्वगुण शेष रह जाता हो या फिर तीनों की साम्यावस्था हो जाती है, और चित्त अपने मूल अर्थात् प्रकृति में लीन हो जाता है। किन्तु यहाँ पर ऐसा कुछ नहीं होता। अतः यह अवस्था योग के अन्तर्गत नहीं आती। किन्तु पूर्व की अवस्थाओं की भाँति इस अवस्था में भी यदि योगीगुरु की विशेष कृपा हो तो चित्त उच्चतर भूमियों को प्राप्त कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न भाग – 7

1. सत्य/असत्य बताइए–

(क) विक्षिप्त भूमि में कभी सत्व तो कभी रजोगुण प्रधान होता है। सत्य/असत्य

(ख) विक्षिप्त भूमि मूढ़ भूमि से निम्न स्तर की होती है। सत्य/असत्य

(ग) योगाभ्यास का प्रारम्भ करने वालों की भी विक्षिप्त अवस्था होती है। सत्य/असत्य

2.4.4 एकाग्र भूमि :

चित्त की इस भूमि में सत्वगुण प्रधान होता है। और रजोगुण और तमोगुण दबे रहते है। इस अवस्था में चित्त की सात्विक वृत्ति किसी एक विषय की ओर लगी रहती है। इस सात्विक वृत्ति का प्रवाह जब निरन्तर बना रहता है, तब उसको एकाग्रता कहते हैं। विद्वान इसे चित्त की स्वाभाविक अवस्था कहते है। इस अवस्था में चित्त पर से रज और तम का आवरण पूर्ण रूप से हट जाता है। जिससे चित्त स्फाटिक के समान स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। चित्त की एकाग्र भूमि में चित्त एक ही सात्विक विषय पर एकाग्र रहता है। चित्त उस सात्विक विषय से सम्बन्ध रखने वाली सभी घटनाओं के विषय पर विचार करता है। और अंत में उसी सात्विक विषय में लीन हो जाता है। यह वैसे ही जैसे आप यदि सागर के तट पर खड़े होकर सागर की विशालता को निहारते है। तो आप सागर की उस विशालता में खो जाते हैं। और जब आप नीले अनन्त आकाश को निहारते हैं तब आप उसके अनन्त विस्तार में खो जाते हैं।

चित्त की इस एकाग्र अवस्था में योग साधक किसी सात्विक विचार में खो जाता है। अब प्रश्न उठता है कि यह सात्विक विचार है क्या? यहाँ सात्विक विचार से तात्पर्य है अपने ईष्ट, गुरूवाक्य, सद्ग्रन्थवाक्य या अपने स्परूप पर एकाग्र होना जैसे कृष्ण भक्त मीरा, सूरदास आदि अपने चारों ओर मात्र कृष्ण को ही देखते थे। उनके जीवन में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई शेष नहीं था। उसी प्रकार भक्त राज हनुमान जिनका चित्त राम के नाम मे इस प्रकार लीन रहता की उनके रोम रोम में राम का निवास था।

योग की भाषा में चित्त की इस अवस्था को सम्प्रज्ञात समाधि भी कहा गया है। इस अवस्था में ईर्ष्या, घृणा, काम, क्रोध, अहंकार, दर्प, दम्भ का पूर्ण रूप से नाश हो चुका होता है, और दिव्य उल्लास तथा आनंद का भाव सागर जीवन को पल्लवित करता है। इस अवस्था के योगी की दृष्टि सम होती है। अर्थात् वह सभी जीवों को समान भाव से देखता है। उसका किसी भी जीव के प्रति वैर भाव नहीं होता। उसका चरित्र आदर्श होता है। उसके भीतर से "मैं" पन का नाश हो चुका होता है। सुख दुःख, स्तुति–निन्दा से उसका मन विचलित नहीं होता।

पूर्व की तीनों चित्त भूमियाँ क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त योग की श्रेणी की नहीं थी। किन्तु एकाग्र भूमि योगस्थ जीवन का प्रारम्भ है। यहाँ से वास्तविक योग का आरम्भ होता है।

अभ्यास प्रश्न भाग – 8

1. लघु उत्तरीय प्रश्न–
   (क) एकाग्र भूमि में त्रिगुणों की क्या दशा होती है?
   (ख) सात्विक विषय से क्या तात्पर्य है?
   (ग) कौन सी चित्त भूमियाँ योग की श्रेणी में नहीं आती?
2. एक शब्द में उत्तर दीजिए–
3. (क) एकाग्र भूमि में किस समाधि की प्राप्ति होती है।

   (ख) चित्त की एकाग्र भूमि में चित्त कहाँ एकाग्र रहता है।

2.4.5 निरुद्ध भूमि :

चित्त की इस भूमि में तमोगुण और रजोगुण के साथ साथ सत्वगुण सम्बन्धी वृत्तियों का भी निरोध हो चुका होता है। चित्त में मात्र पूर्व में किये गये कर्मों के संस्कार शेष रहते हैं। चित्त की यह अवस्था निरूद्ध भूमि कहलाता है। इस अवस्था में चित्त अपनी स्वाभाविक शान्त अवस्था में रहता है। ऐसा चित्त केवल सिद्ध योगियों का हि होता है। इन योगियों की आहार–विहार आदि क्रियाओं को समझ पाना भी कठिन होता है। उनका जीवन प्रारब्ध को भोगने मात्र के लिए शेष होता है। जैसे– आदि शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि रमण, स्वामी शिवानंद आदि कई योगी पुरूष इस श्रेणी के है। ऐसे ज्ञान योग के साधक का चित्त आत्म साक्षात्कार के पश्चात् अपने स्त्रोत मूल प्रवृति में लीन हो चुका होता हे। चित्त की इस भूमि में होने वाली समाधि को असम्प्रज्ञात समाधि कहते है। (इस समाधि के विषय में आप आगामी इकाई 13 में विस्तार से पढेगें)

वेदान्त दर्शन की भाषा में कहें तो– इस अवस्था में साधक ब्रह्म के श्रवण, मनन और निरन्तर निदिध्यासन से ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। वह अनन्त विकास को प्राप्त कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। यह ऐसा ही है। जैसे दुध को दुध में, तैल का तैल में अथवा जल को जल में डाला जाये तो दानों मिल जाते हैं, और एक बन जाते है। गीता में भगवान कृष्ण ऐसे चित्त वाले योगी को स्थित प्रज्ञ की संज्ञा देते हुए कहते हैं। हे पार्थ! जब मनुष्य अपने में ही अपने द्वारा संतुष्ट होकर मन में बैठी हुई समस्त कामनाओं को त्याग देता है। तब उसे स्थिति प्रज्ञ कहते हैं, ऐसे अन्य अनेक दर्शनों और सद् ग्रन्थों में इस अवस्था को विशेष रूप से चर्चा का विषय बनाया गया है। क्यों कि इस अवस्था को योग मार्ग का ही लक्ष्य नहीं अपितु मानव मात्र की मुक्ति मार्ग का लक्ष्य भी कहा गया है। यहाँ पर आकर दुःख–सुख, रोग–शोक, लाभ हानि आदि कोई भी विषय शेष नहीं रहता। पूर्व में हमने चित्त की जिस एकाग्र भूमि की चर्चा की थी चित्त की उस अवस्था (एकाग्र भूमि) में प्राप्त सम्प्रज्ञात समाधि का फल अथवा परिणाम असम्प्राज्ञात समाधि है, जो निरुद्ध भूमि में प्राप्त होती है।

अब तक चर्चा की गयी चित्त की इन पाँचों भूमियों में से क्षिप्त, मूढ और विक्षिप्त चित्त भूमियाँ योग के क्षेत्र की नहीं होती ये चित्त भूमियाँ योग के लिए उपादेय नहीं। किन्तु एकाग्र भूमि चित्त और निरुद्ध भूमि चित्त क्रमशः सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात योग के नाम से भी जाने जाते हैं। अतः यह दोनों चित्त भूमियाँ ही योग क्षेत्र की है। और चित्त वृत्तियों का निरोध कर इन दोनों चित्त भूमियों को प्राप्त करना ही योग का लक्ष्य है।

अभ्यास प्रश्न भाग – 9

1. सत्य/असत्य बताइए–
   (क) निरुद्ध भूमि में असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है?
   सत्य/असत्य
   (ख) तीनों गुणों की वृत्तियों का निरोध निरुद्ध भूमि में होता है?
   सत्य/असत्य
2. लघु उत्तरीय प्रश्न–
   (क) स्थित प्रज्ञ से आप क्या समझते हैं?
   (ख) वेदान्त दर्शन की भाषा में निरुद्ध चित्त साधक कैसा होता है?
   (ग) निरुद्ध भूमि से प्राप्त असम्प्रज्ञात समाधि किसका परिणाम है?

2.5 सारांश :

चित्त की अवधारणा एवं चित्त की भूमियों के ज्ञान से ओत प्रोत इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके होंगे की चित्त क्या है? और चित्त की भूमियों से क्या अभिप्राय है? चित्त भूमियों के प्रति आपके मन में जो जिज्ञासायें थी वह अब शान्त हो चुकि होंगी। चित्त को एक विशाल तालाब के समान माना गया है। जिसमें निरन्तर तरंगें उठती रहती है। यह तरंगे चित्त में विषय के गिरने के कारण उठती है। जैसे तालाब में पत्थर गिरने से तरंगें उठती है। चित्त में उठने वाली ये तरंगे चित्त को ही नहीं अपितु हमारे सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है। चित्त में उठने वाली ये तरंगे कई प्रकार की होती हैं। जिसके कारण हमारा व्यक्तित्व भी अनेक प्रकार का हो जाता है। इसी का अध्ययन हमने चित्त भूमियों के शीर्षक में किया। चित्त में जिस विषय के कारण वह तरंगे (वृत्तियाँ) उत्पन्न होती है। व्यक्ति का स्वभाव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण व्यक्तित्व भी उन्हीं तरंगों के समान हो जाता है। सात्विक तरंगें व्यक्तित्व को सात्विक, राजसिक तरंगें व्यक्तित्व को राजसिक और तामसिक तरंगें व्यक्तित्व का तामसिक प्रवृत्ति का बना देती है।

किन्तु जब इन तरंगों का उठना बंद हो जाता है। अर्थात् जब चित्त निरुद्ध भूमि को प्राप्त हो जाता है, तब व्यक्ति का व्यक्तित्व संकीर्णता से मुक्त हो अनंत हो जाता है। अर्थात् सांसारिक बन्धनों में बंधा हुआ उसका जीवन अब इन बंधनों से मुक्त हो जाता है। अब वह एक सामान्य मनुष्य से ऊपर उठकर एक योगी के रूप में समाज में जाना जाने लगता है। अब वह स्वयं ही नही अपितु अन्य लोगों जो सांसारिक बंधनों में फंसे हैं, उन लोगों को भी मुक्ति के मार्ग का दर्शन कराता है। और यही योग का लक्ष्य है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप चित्त के व्यावहारिक रूप को समझ चुके होगें तथा चित्त की भूमियों के मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं के अंतर को भी जान गये होगें।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली :

वैषम्य – विषमता

अंतःकरण चतुष्टय – मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त का समूह अंतःकरण चतुष्टय कहलाताहै।

दृश्यमान – जो दिखाई दे वह दृश्यमान कहलाता है।

पंचज्ञानेन्द्रियाँ – आँख, कान, नाक, जीभ व त्वचा को पंच ज्ञानिन्द्रि कहते हैं।

पंच कर्मेन्द्रियाँ – हाथ, पैर, मुख, लिंग और गुदा को पंच कर्मेन्द्रि कहते हैं।
आधिक्य – अधिकता
योगस्थ – योग की अवस्था में स्थित होना योगस्थ कहलाता है।

उपादेय – उपयोगी

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 1

1. (क) त्रिगुणात्मक
   (ख) सत्वप्रधान
   (ग) भोग, मोक्ष
   (घ) चुम्बक
2. (क) सात्त्विक
   (ख) अंतःकरण चतुरष्टय
   (ग) सत्व गुण

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 2

1. (क) सत्य
   (ख) असत्य
   (ग) सत्य
2. (क) सांख्य के अनुसार अंतःकरण – मन, बुद्धि और अहंकार है।
   (ख) मन का कार्य संकल्प–विकल्प, बुद्धि का कार्य निश्चय, अहंकार का कार्य अभिमान तथा चित्त का कार्य स्मरण करना है।
   (ग) पूर्व में किये गये कर्मों के फल जिनका भोग अभी बाकि है। वे चित्त में संस्कार के रूप में पड़े रहते हैं।

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 3

1. (क) अ – निश्चय करना
   (ख) स – संस्कारों का
2. (क) चेष्टा
   (ख पुरुष
   (ग) इन्द्रियाँ

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 4

1. (क) चित्त की पांच भूमियाँ हैं–
   (1) क्षिप्त, (2) मूढ, (3) विक्षिप्त, (4) एकाग्र, (5) निरुद्ध
   (ख) संस्कारों के आवरण के कारण चित्त मलिन होता है।
   (ग) संस्कारों के आवरण के नष्ट होने पर चित्त निर्मल हो जाता है।

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 5

1. (क) रजोगुण
   (ख) नैतिक
   (ग) विषयों
(घ) शारीरिक, मानसिक

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 6

1. (क) तमोगुण
   (ख) हिरण
2. (क) राक्षस, पिशाच
   (ख) क्षिप्त
   (ग) रजोगुण, सत्वगुण

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 7

1. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 8

1. (क) एकाग्र भूमि में सत्व गुण प्रधान होता है तथा रजोगुण व तमोगुण दबे हुए होते हैं।
   (ख) अपने ईष्ट, गुरुवाक्य, सद्ग्रन्थ वाक्य या अपने स्वरूप पर एकाग्रता सात्विक विषय है।
   (ग) क्षिप्त, मूढ़ व विक्षिप्त चित्त भूमियाँ योग की श्रेणी में नहीं आती।
2. (क) सम्प्रज्ञात
   (ख) सात्विक विषय पर

उत्तर (अभ्यास प्रश्न भाग) – 9

1. (क) सत्य (ख) सत्य
2. (क) गीता के अनुसार – जब मनुष्य अपने में ही अपने द्वारा संतुष्ट होकर मन में बैठी हुई समस्त कामनाओं को त्याग देता है। तब इस अवस्था की स्थित प्रज्ञ कहते हैं।
   (ख) निरुद्ध चित्त साधक ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है।
   (ग) निरुद्ध भूमि में प्राप्त असम्प्रज्ञात समाधि एकाग्र भूमि में प्राप्त सम्प्रज्ञात समाधि का परिणाम है।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. श्री वास्तव, डॉ॰ सुरेशचन्द्र,(2008) पातंजलयोग दर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. मिश्र, डॉ॰ जगदीशचन्द्र, (2008) भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

3. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ (2008) भारतीय दर्शन का इतिहास भाग–1 अनु॰ कलानाथ शास्त्री व सुधीर कुमार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

4. तीर्थ, स्वामी ओमानंद, (सम्वत्–2054), पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस, गोरखपुर

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री :

1. योगभ्यास का मूलाधार, लेखक – स्वामी शिवानंद, प्रकाशक – दिव्य जीवन संघ प्रकाशन
2. योगदर्शन, लेखक– परमहंस निरंजनानंद, प्रकाशक – श्री पंचदशनाम परमहंस अलखबाड़ा, बिहार
3. कल्याण का योगांक, प्रकाशक – गीताप्रेस गोरखपुर
4. विवेकानंद साहित्य, भाग 3 व 4, प्रकाशक – अद्वैत आश्रम, कोलकत्ता
5. योग मीमांसा, त्रैमासिक शोध पत्रिका, प्रकाशक – कैवल्य धाम लोनावला, महाराष्ट्र
6. http://hinduebooks.blogspot.com
7. http://www.hindudharmaforums.com
8. http://sanskritdocuments.org
9. http://archive.org

2.10 निबंधात्मक प्रश्न :

प्रश्न 1. चित्त की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए चित्त की क्रियाविधि को समझाइये।
प्रश्न 2. अंतःकरण के रूप में चित्त की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न 3. क्षिप्त एवं मूढ़ चित्त भूमि के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
प्रश्न 4. विक्षिप्त चित्त भूमि के स्वरूप का वर्णन करते हुए योग में उसकी उपयोगिता का भी उल्लेख कीजिए।
प्रश्न 5. एकाग्र एवं निरूद्ध चित्त भूमि क्या है? योग के क्षेत्र में इनके महत्व को भी स्पष्ट कीजिए।